REVIEWS OF LITERATURE

ISSN: 2347-2723
IMPACT FACTOR : 3.3754(UIF)
VOLUME - 5 | ISSUE - 3 | OCTOBER - 2017

विकास का मॉडल और समकालीन कविता में भारतीय किसान

डॉ. कृष्ण कुमार
शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय
मटक माजरी(इन्द्री) जिला. करनाल (हरियाणा)

प्रस्तावना :

भारत मूलतः किसानों का देश है। इसकी पचास प्रतिशत से ऊपर आबादी किसी ना किसी रूप से कृषि क्षेत्र से जुडी है। यह व्यवसाय उनकी आवश्यकता भी है, पहचान भी है और मजबूरी भी लगभग 1 अरब 27 करोड आबादी का पेट भरने का दायित्व और विकास की अंतिम कतार में खडा भारतीय किसान यदि आत्महत्या करने को मजबूर होता है। तो बुद्विजीवियो का दायित्व बनता है कि उन परिस्थितियो का अध्ययन करें, उस यथार्थ के परदों को खोलकर देखे जिससे देश मे इतना बोझिल और निर्मम वातावरण तैयार हुआ। उसने अपनी समस्त संभावनाओं को चुका हुआ मान लिया। मैनेजर पांण्डेय ने कहा था – भारत में किसान और कृषि गहरे संकट में है। किसानों के संकट के गंभीरता का प्रमाण उनकी आत्महत्याओं की संख्या से मिलता है। कृषि के संकट होने का सबुत यह है कि बड़ी संख्या में किसान अब खेती से मुंह मोड़कर शहरों की और भाग रहे है।[1]समकालीन कविता में किसानो का जीवन के प्रति मोहभंग की उतरदायी परिस्थितियो का चित्रण गहराई से हुआ है।

समकालीन कविता की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उस वैश्विक परिघटना को जानना समझना जरूरी है जो कई दशको से हमारे युग और राष्ट्र पर दबाव डाल रही है। सैद्वान्तिक रूप से देखे तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में पूंजी का नया केन्द्र पनप रहा था तथा व्यवाहारिक दृष्टि से सातवें आठवें, नौवें दशक में यही पूंजी विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष विकासशील देशो पर अपना दबाव बनाकर अपना ऐंजडा लागू करवाने में सफल रही। सरकारों की प्राथमिकताऐं बदली। राष्ट्रीय अनुकूल सामाजिक सरकारों को बाजारोन्मुख सुधारों की ओर मोड़ दिया। बाजार का जादू कुछ इस कदर हमारे सिर चढ़कर बोलने लगा कि हम हर नीतिगत फैसला लेने से पहले बाजार और पूंजी के मिजाज को समझने लगे, उसका अध्ययन करने लगे। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में पूंजी प्रमुख हो गई और लोग हाशिए पर जाने लगे। हमने इस विकास के मॉडल को अर्न्तराष्ट्रीय दबाव के कारण स्वीकार किया, न कि अपनी आवश्यकताओं के कारण। ब्रह्मोदव शर्मा का कथन है कि ''आजादी के बाद सवाल था, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले देश के नवनिर्माण का। ऐसी स्थिति में भारत का आजाद सरकार ने उद्योग को इस देश की अर्थव्यवस्था का लिडिंग सैक्टर घोषित कर दिया। इसे एक विडम्बना ही कहा जाऐगा कि जिस देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या खेती करती है उस देश की अर्थव्यवस्था का इंजन उद्योगों को माना गया।''[2] इसलिए इसके मनोवांछित परिणाम नहीं मिलें। असद जैदी इन दशकों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैः–

कुछ होना था सतर के दशक में जो नहीं हुआ
अस्सी के दशक में चलने लगी उल्टी सीधी हवाऐं।
नब्बे के दशक में जो नहीं होना था, हो ही गया।
रूखसत हो चली है पूरी सदी।
अब यह सब अध्ययन की वस्तु है।

समकालीन कविता का मिसाज उस समय बदलना शुरू हुआ, जब 24 जु0 1991 को भारतीय अर्थव्यवस्था के द्वार पूंजी के लिए खोल दिए गए। नव उदार बाढी नीतियों के गीत गाये जाने लगे। राजनेताओं और नौकरशाहों ने देश की समस्त समस्याओं का निदान आर्थिक सवृद्धि का बढना मान लिया। इस प्रक्रिया से अमीर ओर गरीब लोगों के बीच की खाई आश्चर्यजनक ढंग से बढने लगी अधिकांश जनता जीवन की बुनियादी जरूरतों के लिए तरसने लगी। कर्ज में डूबे भारत को एकाएक सुपर पावर और आर्थिक महाशक्ति कहकर पुकारा जाने लगा। अर्न्तराष्ट्रीय रेटिंग ऐजंसियों ने भारतीय साख को बढ़ा दिया और उम्मीद जताई कि 2030 तक अव्वल स्थान हासिल कर लेगी।

लेकिन जरूरी नहीं जो राजनेताओं/उद्योगपतियों का सच हो, वह जनता के लिए भी हकीकत हो। कवि अपने ढ़ग से युग की समीक्षा करता हुआ, आवरण में छिपे हुए सत्य को जनता के सामने बेनकाब करता है। पंकज सिंह के शब्दों में

प्रकाश और धुधलके के कितन परदों
कितने रहस्यों में लिपटा होता है यपार्थ
कई तरह से देखना होता है
कि कुछ कहने से पहले दिखता है
गौर से देखो, कि उसका कोई हिस्सा
धुएं के धूल में हाहाकार में
भाषा के छल में जयकार में
बाजार की तकरार में छिपा रह जाता है।

इस तरह श्रीधर करूणानिधि शाईनिंग इंडिया के हकीकत पर प्रश्न चिह्न लगाते है।

हद से ज्यादा अच्छा लगे कुछ
तो उसे रोको वहीं
करो उसकी पड़ताल
हो सकता है जो चीज दिखती है
वह सच बिलकुल ना हो।

भूमण्डलीकरण अपनी सैद्धान्तिकी चमक–दमक शब्दों में प्रस्तुत करता है व झूठ पर सच का आवरण चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। यह बड़ा गहरा विरोधाभास है कि जिस देश की जी0 डी0 पी0 पिछले 15 वर्षों से 9 प्रतिशत अंक के आस–पास धूम रही हो। वहां लाखों किसान आत्महत्या करने को मजबूर हो। सुरेश सेन निशांत उस तिकडम को बेनकाब करते है

जो भारतीय किसानों को लगातार विस्थापित कर रही है। प्राकृतिक स्थितियां अनुकूल होने पर लोग अपना घर–बार छोड़ने को क्यों मजबूर है। वो पड़ताल करते है कि बहुराष्ट्रीय निगमों ने भूमण्डलीकरण की नीतियों की आड़ में उनके बीजों पर नियंत्रण कर लिया है। डब्ल्यू टी0 ओ0 ने ट्रिप्स (व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार समझौता) के तहत बीजों को बौद्धिक सम्पदा घोषित करके इनके आदान–प्रदान पर रोक लगाने की व्यवस्था की है।''[3] अब उनके खेतों की बारी है। बहुराष्ट्रीय निगम बीजों के माध्यम से किस प्रकार उनको उनकी जड़ो से विस्थापित कर रही है, इसका नमूना निशांत की कविता में देखने को मिलता है:–

हरसूद नहीं है हमारा गांव
किसी पानी में भी नहीं डूब रहा
पर विस्थापन है कि नहीं रूक रहा
आज भी निकला यहा एक कुनबा
दूर मैदानों की ओर
बारिश भी वक्त पर हुई थी।
ठीक ढंग से जोती गई जमीन
फसलों को न नील गायों ने चरा
और न जंगली सुअरों ने उजाड़ा
फिर भी बंजर है जमीन
पता नहीं किसने बाटे थे
वे धोखेबाज बीज
जो खेतों में नमी और खाद पानी होने के
बावजूद उगे नहीं
है कोई जो कर रहा है
लोगों को दर–बदर
पर उंगली भी नहीं उठ रही उसकी ओर

बलराज लिखते है – ''भूमण्डलीकृत उदारीकरण ने किसानों को उदारीकरण के जाल में कुछ ऐसे फास लिया है कि बीज, सिंचाई और खेती के औजारों के लिए लिया गया कर्ज उनके गले की फांस बनने लगा है और देखते ही देखते लाखों किसान आत्महत्या करने लगे।''[4] कवि का यह सामाजिक सरोकार है कि उन शक्तियों की हकीकत जनता के बीच लेकर जाये, जो विज्ञापन की चमक–दमक में किसानों को स्वच्छ भाग दिखलाती है, जिसकी परिणिति खेतों के प्रति मोह भंग और अन्ततः विस्थापन एवं आत्महत्या में होती है। कवि शैलेय भी 'भंवर खाता कुम्हार और रूई हो गये कपास' में किसान की इस सच्चाई को दिखलाते है :–

पर आज जब मैं
कपास के खेतों में गया
तो कांप कर रह गया
कपास उगाने वाले
रूई हो रहे थे .....

पंचसितारा होटल की मखमली रजाई में जाड़ो की रात बिताने वाले, वैश्विक पूंजी से याराना रखने वाले वर्ग के पास सोचने का समय नहीं हैं कि विदर्भ का क्षेत्र जहां बी0 टी0 बीजों के रोपने से आत्महत्याओं का सिलसिला शुरू हुआ और पूरे भारत में फैल गया। यह बहुत बड़ी समस्या है, गहरे मंथन और विश्लेषण की आवश्यकता है लेकिन सताधारी वर्ग की चिंता पूंजी निवेश के लिए नयी–नयी योजनाएं बनाने कि है। इस पूंजी का गरीब–गुरबे तक तो एक अंश ही पहुंच पाता है, या तो बिचौलियों में बट जाती है या फिर निवेशकों की आकांक्षों का पूरा करती है। राजीव कुमार त्रिगर्ती लिखते है:–

लिखे जाने से ज्यादा जरूरी है पढ़ा जाना
जो जमीन से पैदा नहीं हुआ
वह नहीं जानता जमीन का दर्द
उसे नहीं मालूम जमीन का कष्ट
एयर कंडीशन कमरों में बनाई जाती है
किसान के विकास की योजनाएं
सब कुछ पहुंच जायेगा गांव में
इतने लुटेरे है जो
कितनों के तन पर
नहीं लिपटने देते कपड़ा
और पेट में नहीं जाने देते
एक भी दाना

हवा को पीना और उसमें जीना कितना मुश्किल होता है

लिखे जाने से जरूरी है इस पढ़ा जाना
उन चेहरों को जो हवा को मजबूरी में जीते है।

पेटेंट कानूनों की आड में विकसित देश, विकासशील देशों की स्थानीय प्राकृतिक संपदा पर अपना नियंत्रण स्थापित कर रहे। वे यहां की फसलों और प्राकृतिक जड़ी–बूटियों पर अधिकार जमा रहे है। दुनिया का 91 प्रतिशत चावल एशिया में पैदा होता हैं लेकिन बहुराष्ट्रीय दिवस कम्पनी सिनजेटा ने 2004 में चावल पर पेटेंट कराने की कौशिश की। भगवत रावत साम्राज्यवादी शक्तियों के इस घिनौने खेल की शातिर चालों को एक–एक करके हमारे सामने लाते हैः–

तुम्हारे सिरहाने एक अजनबी सौदागर
रख गया है एक अनुबंध पत्र
कितने समझौते करोगे तुम
वे तुम्हारे पोखरों से
उठा ले जाऐंगे गुलाब आंखों वाली मछलियां
वे फांस ले जाऐंगे, सबसे मीठा गाने वाली चिड़िया
फिर एक दिन तुम्हे अपने हाथ को
साबित करना पड़ेगा अपना हाथ
अपनी आंख को अपनी आंख
क्या तुम्हे खेतों की ओर चले आते
विशालकाय जूतों के निशान दिखाई देता है?

कवि अपने युग का समीक्षा और सम्भावनाओं पर विचार करता है। समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर भगवतरावत, अष्टभुजा शुक्ल, रामाज्ञाशशीधर, असद जैदी,पाश, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, निर्मला पुतल, रामतलंग, लीलाधर मंडलोई, विष्णुनागर, कुमार अम्बुज, वीरेन डंगवाल, अरूण कमल, ज्ञानेन्द्रपति, जितेन्द्र श्रीवास्तव, निदानवाज, सुरेश सेन, निशांत, कुमार विकल लीलाधर मंडलाई, विष्णु नगर, कुमार अम्बुज, वीरेन डगवान, अरूण कमल आदि कवियों ने उदारीकरण द्वारा संचालित विकास के मॉडल के निचे छिपी किसानों की चीखों को बेनकाब किया है। इस मॉडल का उद्देश्य अधिकांश जनता को हाशेय पर धकेल कर मुठीभर लोगों के लिए सुख सुविधाओं का निर्माण करना है।

निष्कर्ष

भूमण्डलीकरण की नीतियां अपनाने के बाद, औद्योगिक घरानों में जल, जंगल और जमीन को लेकर प्रतिस्पर्धात्मक दौड़ दिखाई दे रही है। इस दौड़ में वह जीत सकता है, जिसके पास अकूत संपति है। यहां स्वतंत्रता के मायने किसान और औद्योगिक जगत के लिए बदल गए है। हमारी जी0 डी0 पी0 पिछले 15 वर्षों से 5 प्रतिशत से लेकर 9 प्रतिशत तक रही (अमेरिका, जापान और यूरोप की जीडीपी जीरो से लेकर के तीन–चार प्रतिशत तक रही है) सरकार शाईनिंग इंडिया का प्रसार करती है, दुनिया भारत को उभरती हुई महाशक्ति के रूप में देख रहा है, लेकिन इसी दौरान लगभग 4–5 लाख किसान आत्महत्या कर चुके है। उनकी जमीन पर पकड़ लगातार ढीली होती जा रही है। उनकी जोत का आकार कम हो रहा है। जब एक कंपनी पर कर्ज बढ़ता है तो बेलआऊट पैकेज का शोर मचाया जाता है। उद्योगपति, मीडियाकर्मी, अर्थशास्त्री, वितीय एजेंसियां मिलकर इस प्रकार वातावरण (आकड़ों के माध्यम से) रचते है कि यदि जल्दी से जल्दी पैकेज नहीं दिया गया, तो निवेश पर बुरा असर पड़ेगा और जब कर्ज से दबकर किसान आत्महत्या करता है, वह सामान्य सी खबर भी नहीं बनती है। हम समकालीन हिन्दी कविता के मिजाज को समझे कि शाईनिंग इंडिया के नीचे दबी भारतीय किसान की सच्चाई को कितना समझ पाई है। हिन्दी कविता सरोकार रहने वाले कवि, पाठक और आलोचक मौजूदा विकास के मॉडल किस दृष्टि से देखते है। बहुधा संसार में राष्ट्र के प्रतिनिधियों की सोच एवं दृष्टि तथा रंगाकर्मियों –कलाकारो विचारों की दृष्टि में बहुत अंतर देखने को मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. मैनेजर पाण्डेय, भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, पृ0 144
2. ब्रह्मादेव शर्मा, किसानों का शोषण, हिन्दी क्षेत्र की ज्वलंत समस्याऐं जयनारायण, कल के लिए, अंक 47, सितम्बर 2004, पृ0 41
3. सम्पादक पी0 रवि , कविता का वर्तमान, पृ0 42
4. बलराम, दैनिक ट्रिब्यून, लेख – किसानों के बेबस जीवन की फांस दिनांक 19.06.2006